क्या आप मेरी कहानी सुनना चाहेंगे - शरजील इमाम

मेरे विचार जानिए, फिर मुझे जो भी कहना है कहें

शरजील इमाम

बिहार के पटना और जहानाबाद के जिन इलाकों में मैं पला बड़ा वहां सात से आठ फीसद मुसलमान आबादी है। पिछले सौ सालों में इस इलाके में मुस्लिम गांवों पर अनेक छोटे बड़े हमले हुए जिनमें 1917, 1946 और 1989 के हमले सबसे बड़े और सुनियोजित थे। ऐसे इलाके में जहां मुसलमानों की छोटी सी आबादी दंगों से लेकर रोजमर्रा के भेदभाव के बीच जीवन बिताती है वहां मेरे पिता अकबर इमाम ने अपनी जिंदगी मुसलमानों को राजनीतिक रूप से इकट्ठा करने में लगाई। यानी बचपन से मैंने दंगों, भेदभाव और एक दबाई हुई अल्पसंख्यक कौम की जमीनी हकीकत को देखा और भोगा है।

आईआईटी-बॉम्बे में एक अकेला मुसलमान लड़का

साल 2006 में आईआईटी-बॉम्बे के कंप्यूटर-साइंस डिपार्टमेंट में एडमिशन लेने वाला मैं अकेला मुसलमान लड़का था. हॉस्टल में कुल तीन मुसलमान पोस्ट-ग्रेजुएट थे लेकिन लगभग 200 अंडर-ग्रेजुएट्स में मैं अकेला था।

मुसलमानों के लगभग न के बराबर होने की वजह से यहां मुसलमानों के बारे में कई गलत धारणाएं और अफवाहें मौजूद थीं। कई नादान हिंदू छात्र उन्हें सच मान बैठे थे क्योंकि उन धारणाओं का खंडन करने वाला कोई नहीं था। एक बार दूसरे साल में जब एक सीनियर-विंग में कमरा लेने के लिए मेरा इंटरव्यू चल रहा था तो थर्ड ईयर के कुछ लड़कों ने मुझे कमरा देने से मना कर दिया क्योंकि मैं मुसलमान था।

अजीबोगरीब सवाल पूछे गये जैसे, 'अगर हममें से कोई मुहम्मद को गाली दे, तो?' या फिर 'तुम लोग दाढ़ी क्यों नहीं बनाते?'

खैर मेरे कुछ दोस्तों के बीच बचाव के बाद प्रशासन ने एक रैंडम कमरा मुझे दे दिया। थर्ड ईयर में कुछ हिंदू छात्र करीब महीने भर ये कोशिश करते रहे कि वो मुझसे बहस-बातचीत करके जबरन इस्लाम-विरोधी साहित्य देकर मुझे हिंदू या इस्लाम विरोधी बना सकें.ग्रेजुएशन के बाद दो साल मैंने बैंगलोर में एक सॉफ्टवेयर कंपनी में डेवेलपर के तौर पर बिताए। कॉरपोरेट दुनिया में कम ही मुसलमान ऊंचे ओहदों तक पहुंच पाते हैं। ऐसा शायद इसलिए भी क्योंकि इन पेशों में ऊंची जगहों पर आने वाले अधिकतर लोग आईआईटी जैसे कॉलेजों से ही आते हैं जहां मुसलमान कम ही पहुंचते हैं। इस कंपनी में भी मेरे गुजारे साल आईआईटी में बिताए सालों से कुछ अलग नहीं थे।

मैंने इतनी कहानी क्यों सुनाई?

आपको इतना सब इसलिए बताया क्योंकि इस बैकग्राउंड के साथ मैं 2013 में जेएनयू में आधुनिक इतिहास में मास्टर्स करने के लिए आया. मेरे अंदर छवि थी कि जेएनयू तो धर्मनिरपेक्षता का गढ़ है। यह तो शोषक शक्तियों के विरुद्ध संघर्ष का केंद्र है।

दाखिले के रोज ही मैंने फर्जी एनकाउंटर जैसे मुसलमानों के मुद्दों पर कैंपस की वाम पार्टियों के बड़े-बड़े पोस्टर देखे। मैं भी इन वामदलों की ओर आकर्षित हुआ और कैंपस की सबसे बड़ी वाम पार्टी आइसा में शामिल हो गया। मैं आइसा में दो साल से अधिक रहा और एक साल के लिए इसकी कार्यकारिणी का सदस्य भी रहा। इसके अलावा मैंने आइसा के प्रत्याशी के तौर पर काउंसलर के पद के लिए 2015 का जेएनयूएसयू चुनाव लड़ा।

नजीब वाली घटना के बाद मैंने यह पार्टी छोड़ दी। इन सालों में मुझे पार्टी को अंदर से समझने का मौका मिला। मुझे समझ आया कि यहां भी साथियों के साथ बहस बातचीत की सीमाएं हैं। यहां भी भरपूर पाखंड दिखा।

वामपंथियों से लगा पहला झटका

इस पार्टी के प्रति मेरे मन में जो सम्मान था उसे पहला झटका तब लगा जब जेएनयूएसयू के तत्कालीन अध्यक्ष और जॉइंट सेक्रेटरी के खिलाफ 2013-14 में यौन उत्पीड़न का मामला सामने आया। ये दोनों आइसा से थे। एग्जीक्यूटिव कमेटी के हस्तक्षेप के बाद ही अध्यक्ष को बरी किया गया। मगर दोनों को ही अपने पदों से इस्तीफा देना पड़ा और शिकायतकर्ता के खिलाफ दुष्प्रचार करने का आरोप सिद्ध होने पर उन्हें हॉस्टल भी खाली करना पड़ा।

शिकायतकर्ता के खिलाफ दुष्प्रचार और इन दोनों को बचाने में तो पूरी पार्टी ही व्यापक रूप से लगी हुई थी। मेरी शंका को साथी यह कहकर खारिज कर दिया करते थे कि यह मामला पार्टी के खिलाफ एक षड्यंत्र है।

लेकिन वक्त बीतने के साथ ऐसे और भी मामले सामने आए तो साफ हो गया कि आइसा के पदाधिकारियों के खिलाफ यौन-उत्पीड़न के मामलों का एक लंबा इतिहास है और शिकायतकर्ता के खिलाफ मिथ्या दुष्प्रचार करके अपने नेताओं को बचाने की इनकी संस्कृति रही है।

हिंदू मर्दों का कब्जा वामपंथ पर भी

2013-14 में वामदलों द्वारा दलित विमर्श के हथियाए जाने के विरोध में कैंपस में बिरसा-अंबेडकर-फुले-छात्रसंघ (बापसा) का गठन हुआ। बापसा का दावा है कि मुख्यधारा के वामदल मूलभूत रूप से ब्राह्मणवादी और पितृसत्तावादी हैं और दलित नेतृत्व को उभरने से रोकते हैं।

सच्चाई भी है कि इन दोनों ही पार्टियों में महत्वपूर्ण पदों पर हमेशा ही ऊंची जाति के हिंदू मर्द काबिज रहे हैं। बापसा पिछले दो वर्षों में और मजबूत हुई है और पिछले चुनावों में अध्यक्ष पद के लिए उसका प्रत्याशी दूसरे नंबर पर आया। प्रगतिशील जुबान में बात करने वाले वाली आइसा के प्रति मेरे सम्मान में दूसरी दरार इस तरह पड़ी।

मेरे अपने सच

बहरहाल, एक बहुसंख्यक हिंदू आबादी के बीच मेरे जीवन में इस्लामोफोबिया हमेशा एक मुद्दा रहा है। स्वाभाविक ही है कि इसके बारे में मेरी जानकारी और संवेदना दोनों ही अधिक थे। इस कैंपस में चार सालों के दौरान मुझे आईआईटी जितना ही समय ऐसे लोगों से बहस करने में लगाना पड़ा जिनको इस्लाम उसके महापुरुषों या रीति रिवाजों के बारे में कुछ नहीं पता लेकिन फिर भी वे इनको बेरोकटोक गाली दे लेते हैं।

धीरे-धीरे मझे यह एहसास हुआ कि बहस-मुबाहिसे में कॉमरेडों का इस्लाम विरोधी उत्साह आईआईटी के अज्ञानी हिंदू छात्रों से अलग नहीं है। दोनों ही का आधार भ्रांतियों और इस्लाम के नाम पर कुछ भी उल्टी सीधी चल रही चीजों में है।

कॉमरेड भी अलग नहीं निकले

दोनों कुछ निहायत ही लोकल लेवल की घटनाओं या मुद्दों को बढ़ा-चढ़ाकर उन्हें विश्वव्यापी 'इस्लामी' मुद्दों के रूप में पेश करते हैं। कुछ कॉमरेड कुरान को एक 'त्रुटिपूर्ण' पुस्तक मानते हैं जिसके कारण मुसलमानों में आतंकवाद को बढ़ावा मिलता है।

कई कॉमरेड मुसलमानों को ही अलग से नारी विरोधी बताते हैं। इसके अलावा इस्लाम विरोधी फेक-न्यूज या झूठी खबरों और तथाकथित 'फतवों'- जो कि वास्तव में यदाकदा ही फतवे होते हैं- का भी धड़ल्ले से प्रचार किया जाता है। संक्षेप में कहा जाए तो इस प्रगतिशील कैंपस के अंदर भी इस्लामोफोबिया भयंकर रूप से व्याप्त है।

पर वामपंथी भी ऐसे क्यों हैं?

मेरे खयाल से इस्लाम के विरुद्ध इन भ्रांतियों की तीन मुख्य वजहें हैं:

1. अधिकतर कॉमरेडों की परवरिश उच्च जाति के मुस्लिम विरोधी माहौल में ही होती है।

2. हममें से ज्यादातर अंग्रेजी भाषी दुनिया की उदारवादी मीडिया के सताए हुए हैं जिसने इस्लाम के प्रति नफरत फैलाने के नए-नए तरीके ईजाद कर रखे हैं।

3. 'धर्म' के विरुद्ध एक कट्टर पूर्वाग्रह जिसकी वजह खुद को मार्क्सवादी नास्तिक समझने लगे हैं। इस तरह ये कॉमरेड पूर्वाग्रहों से भरे होते हैं और इस्लामी आस्था तथा रीति-रिवाजों के बारे में बहस करते वक्त इन्हें न तो ज्यादा पता होता न इनमें चीजों को समझने की ताकत होती है। पूर्वाग्रहों से भरी हुई इनकी बातें सुन कर कैंपस में मुसलमान नौजवान और अलग-थलग पड़ जाते हैं।

उदाहरण के लिए जेएनयूएसयू की भूतपूर्व उपाध्यक्ष और आइसा की नेता ने एक ऐसे वाक्य का उदाहरण दिया जिसमें पैगंबर मुहम्मद के बारे में अपशब्द का प्रयोग किया गया था और इसके द्वारा वह हम सब को समझा रहीं थीं कि ऐसे बयान हेट-स्पीच नहीं कहे जाने चाहिए।

मैं तो इस प्रगतिशील कैंपस के पहुंचे हुए लोगों के अज्ञान को देख कर ही दंग रह गया। मैं यह नहीं समझ पाया कि अगर ऐसे बयान नफरत फैलाने वाले बयान नहीं हैं तो फिर जब 19 साल के एक अकेले मुसलमान के रूप में मुझसे मेरे कट्टर सीनियरों ने यही सवाल आईआईटी-मुंबई के हॉस्टल में पूछे थे तो मैं इतना परेशान क्यों हो गया था?

मसला बात का नहीं सोच का है

एक और दिलचस्प उदाहरण एक आइसा सदस्य की फेसबुक पोस्ट है जोकि जेएनयूएसयू अध्यक्ष पद के उम्मीदवार भी रह चुके हैं। वो एबीवीपी के एक नेता को इसलिए 'जयचंद' बुलाते हैं क्योंकि एबीवीपी जेएनयू में शैक्षिक स्वतंत्रता के हितों के विरुद्ध काम कर रही है। भावना सही है, लेकिन उदाहरण बिल्कुल गलत।

जयचंद को एक गद्दार के रूप में भारतीय इतिहास के इस्लाम विरोधी चित्रण में ही दिखाया जाता है। आरोप लगाया जाता है कि जयचंद ने 'मुस्लिम' गोरी की 'हिंदू' पृथ्वीराज चौहान के विरुद्ध सहायता की और इसलिए वह 'भारत विरोधी' था।

जबकि, भारत की एक देश के रूप में परिकल्पना ही सात शताब्दियों बाद सामने आती है। भारत की परिभाषा को 13 वीं शताब्दी तक खींच ले जाना एक इस्लाम विरोधी एबीवीपी कार्यकर्ता के लिहाज से तो फिर भी ठीक ही जान पड़ता है लेकिन आईसा के कॉमरेड भी यह नहीं जानते कि वह अनजाने में आग में घी डालने का काम कर रहे हैं?

अगर अध्यक्ष पद के उम्मीदवार की इतिहास की समझ में इतनी मूलभूत खामियां हैं तो फिर आम कॉमरेडों की हालत का अंदाजा खुद ही लगाया जा सकता है।

आइसा में मुसलमानों की जगह कितनी?

आइसा मुसलमानों को प्रतिनिधित्व देने के मामले में भी बार-बार चूकी है। साल-दर-साल मुसलमानों को जेएनयूएसयू जॉइंट सेक्रेटरी का पद एक टोकन के तौर पर दिया जाता रहा है जिससे यूनियन में उनकी नाममात्र उपस्थिति बनी रहे और मुस्लिम वोट बटोरे जा सकें।

एसएफआई का भी वही हाल है। उसका पितृदल सीपीएम जिसने पश्चिमी बंगाल पर साढ़े तीन दशकों तक राज किया है ने भी मुसलमानों को भयानक रूप से वंचित ही रखा है।

और फिर आया नजीब

ताबूत में आखिरी कील थी नजीब की घटना जिसमें एक तथाकथित झड़प के बाद नजीब को कुछ छात्रों ने पीटा। जेएनयूएसयू अध्यक्ष और आइसा के नेता मोहित पांडे हिंसा के दौरान ही घटना स्थल पर पहुंचे और खुद इसे देखा लेकिन वार्डन के सामने सुनवाई में वह यह बात बताना ही भूल गए।

उन्होंने नजीब को ही अपराधी घोषित कर दिया उसकी आवाज को दबाया और उसके विरुद्ध बोले। इसके बाद वार्डन ने नजीब को 6 दिनों में हॉस्टल खाली करने को कहा। अगली ही सुबह नजीब गायब हो गया और तब से 6 महीने बीत चुके हैं। नजीब के पक्ष का प्रतिनिधित्व करने की बजाय उसकी आवाज को ही दबाने के लिए अध्यक्ष पर अभियोग चलाकर उसे दंडित करने की जगह आइसा-एसएफआई यूनियन मोहित पांडे का बचाव करने में लग गई।

इस मुद्दे को सांप्रदायिक रंग देकर प्रचार किया कि एक 'भड़की हुई सांप्रदायिक भीड़' ने नजीब को पीटा इसलिए कैंपस के अन्य मुसलमानों को भी संभल कर रहना चाहिए। यह सब गलतबयानी और डर फैलाने की एक कवायद थी जिससे वह अपने अध्यक्ष की गलती को छिपाना चाहते थे और मुसलमानों को डराकर दबाव में लेना चाहते थे। यह ठीक वैसा ही है जैसा एक शताब्दी से कांग्रेस मुसलमानों के साथ करती आई है।

बीजेपी की बात अलग है, उसके कई नेता तो अल्पसंख्यकों के खिलाफ खुलकर बोलते ह। खैर, यही वह घटना है जिसकी वजह से मैंने आईसा-एसएफआई के अफसानों के खिलाफ बोलना शुरू किया।

जेएनयू के सबसे बड़े वाम दल की तो यह स्थिति है। उनकी पूरी वैधता सिर्फ शोर मचाने या नारेबाजी तक ही सीमित है। न तो कैडर को परिपक्व बनाने की कोई कोशिश है और न ही वाद-विवाद या प्रश्न पूछने को प्रोत्साहित किया जाता है।

उनकी तूफानी क्रांतियां अक्सर उन जुलूसों में देखी जा सकती हैं जो गंगा ढाबा से शुरू होते हैं और चंद्रभागा हॉस्टल पर जाकर खत्म हो जाते हैं।

शरजील इमाम ने शाहीन बाग और एएमयू अलीगढ़ में क्या कहा था

27 दिसंबर 2019 को शरजील इमाम का भाषण शाहीन बाग के मंच से हुआ। उसके भाषण का सार यह था कि हमें देश के तमाम हिस्सों में शाहीन बाग जैसा आंदोलन शुरू करना होगा...एक आदमी अपने साथ कम से कम दस लोगों को जोड़े तो आंदोलन बड़ा होता जाएगा। शाहीन बाग शुरुआत है, हमें यहां से अगर उठाया गया तो हम दिल्ली में कहीं और भी जाकर बैठ सकते हैं। हम इंडिया गेट पर बैठ सकते हैं, हम मथुरा रोड पर बैठ सकते हैं, हम कनॉट प्लेस में बैठ सकते हैं। मुद्दा ये है कि हमें अपनी आवाज सरकार को सुनानी है।... हमें असम की तरह आंदोलन शुरू करना होगा...उसने कहा असम का चक्काजाम शेष भारत से उसको अलग कर देगा क्योंकि सारा आना-जाना रुक जाएगा...। शरजील इमाम ने जिस दिन ये बातें कहीं थीं उस दिन असम में एनआरसी के खिलाफ भयानक हिंसा हुई थी और देश में कहीं भी शाहीन बाग जैसे आंदोलन शुरू नहीं हुए थे।

सबसे पहले शरजील इमाम के बारे में धारणा बनाने की शुरुआत रिपब्लिक टीवी ने की...और अब उस धारा में पूरा मीडिया बह गया है। किसी ने शरजील इमाम का पूरा भाषण सुनने की जहमत नहीं उठाई। लेकिन भाजपा का एक बेवकूफ प्रवक्ता शरजील के वीडियो को एडिट (संपादित) कर दिखाए तो उसे सही माना जाता है। यही कन्हैया कुमार, उमर ख़ालिद, अनिरबान और शहला राशिद के समय में भी हुआ था। कैसे जी न्यूज़ ने वीडियो में छेड़छाड़ करके इन्हें देशद्रोही और टुकड़े टुकड़े गैंग कहा था। लेकिन आज अगर कोई भी कन्हैया कुमार या उमर ख़ालिद समेत चारों को देशद्रोही कहता है तो उसे खुद भी शर्म आती है।

एक्टिविस्ट हिमांशु कुमार ने श्वेता त्रिपाठी के हवाले से अपनी फेसबुक पोस्ट में लिखा है - शरजिल के पूरे भाषण को मीडिया में रखा नहीं गया। वो एडिट किया हुआ था, दूसरा जो एडिट किया अंश सुना उसमें वो यही कहने की कोशिश कर रहा था कि चक्का जाम करने की ज़रूरत है। अब इस चक्का जाम से इलाक़े कटते हैं, ये बात ऊपर बतायी जा चुकी है। अगर उसने यही बात यूनियंस के मंच पर की होती (ख़ास तौर से किसानों के मंच पर) तो सभी को बात समझ आ जाती। उसकी ग़लती यही है कि उसने मुसलमान होते हुए एक ऐसे मंच से अपनी बात की जो संप्रदायिकता के मुद्दे पर ऐसे दौर में सरकार के ख़िलाफ़ खड़ा है जहां सरकार अपने ही लोगों पर साम-दाम-दंड-भेद के सारे फ़ासीवादी हथियार लिए खड़ी है. और साथ में हैं मीडिया से लेकर तमाम संस्थान. गुज़ारिश यह है कि इतनी जल्दी अपना स्टैंड देने से बचिए। थोड़ा समय लीजिए क्योंकि हर बात को बढ़ा-चढ़ाकर पेश करने और आपसी ताने-बाने तोड़ने में इस व्यवस्था को महारत हासिल है।

शरजील इमाम-प्यादे को वजीर दिखाने की कोशिश

जेएनयू के छात्र शर्जिल इमाम को दिल्ली पुलिस ने मंगलवार 28 जनवरी को बिहार के जहानाबाद से गिरफ़्तार कर लिया। उस पर '' मुकदमे दर्ज हैं -कहीं देशद्रोह के तो कहीं आतंकवाद के'' इमाम पर दिल्ली जामिया और अलीगढ़ यूनिवर्सिटी में नये नागरिकता कानून के विरोध में भाषण देने का आरोप है। इस कारण से उसके खिलाफ़ मणिपुर, अरुणाचल प्रदेश, आसाम, यूपी व दिल्ली पुलिस ने मुकदमे दर्ज कर रखे हैं।

बीजेपी शासित राज्यों की ही पुलिस द्वारा मुकदमे दर्ज करने से इसमें पक्षपात और अन्याय की शंका होना स्वाभाविक है। जब खुद गृहमंत्री टुकड़े-टुकड़े गैंग को सबक सिखाने की बात करते हैं, मंत्री अनुराग ठाकुर मंच से 'गद्दारों को' गोली मारने की बात करते हैं, और भाजपा एमपी परवेश वर्मा विरोधियों को बलात्कारी बता कर भड़काऊ भाषण देते हैं। यूपी के मुख्यमंत्री सीएए विरोधियों को सबक सिखाने की बात करते हैं। ऐसे में एक व्यक्ति पर इसलिये मुकदमा दर्ज करना कि वो इस विरोध को असम का संकीर्ण रास्ता रोक कर असरदार बनाने की बात करता है, पूर्णतः अन्यायपूर्ण है। यह विरोध को गैरकानूनी तरीके से कुचलने की साजिश है।

दूसरी तरफ़ इससे यह भी जाहिर होता है कि बीजेपी सरकारें इस मुद्दे पर घृणा व डर फ़ैलाने का छोटा सा भी मौका चूकना नहीं चाहती हैं चाहे इसके लिये उन्हें शर्जिल जैसे प्यादे का कद बढाकर वजीर जैसा क्यों न दिखाना पड़े। जब सरकार विरोधी प्रदर्शनकारियों के खिलाफ़ कुछ भी न मिले तो इसी तरह बात का बतंगड बना कर राजनैतिक फ़ायदा उठाने की कोशिश बीजेपी की पुरानी आदत हे। और अब जब दिल्ली चुनाव सर पर हैं तो एक भी मुस्लिम आरोप लगाने को मिल जाये तो घृणा में भरे उतने ही हिन्दूओं के वोट पक्के।